कैसे हो
बहुजन राजनीति का पुनरुद्धार ?

संपादक

एच.एल. दुसाध

डॉ. कैलेशवर प्रियदर्शी

प्रस्तावना

डॉ. अनिल यादव जयहिंद

कैसे हो बहुजन राजनीति का पुनरुद्धार?

सम्पादक

एच. एल. दुसाध

डॉ. कौलेश्वर प्रियदर्शी

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन

दिल्ली

प्रथम संस्करण : 2019

प्रकाशक : **बहुजन डाइवर्सिटी मिशन**
B-1, 149/9 किशन गढ़, वसंत कुंज
नई दिल्ली-110070, सम्पर्क : 011-26125973, 9654816191
E-mail : hl.dusadh@gmail.com

प्रशासनिक कार्यालय
2/1467, आदिल नगर, कल्याणपुर
लखनऊ-226022
मो. : 9654816191

© **लेखक**

मूल्य : 125.00 रुपये

रचना	:	**कैसे हो बहुजन राजनीति का पुनरुद्धार?**
संपादक	:	एच.एल. दुसाध - डॉ. कौलेश्वर प्रियदर्शी
आवरण	:	क्वालिटी प्रिंटर्स
शब्दांकन	:	कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक	:	क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

समर्पित

बहुजन भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन में
युगान्तकारी परिवर्तन लाने वाले मंडल आयोग
के अध्यक्ष श्री बी.पी. मडल के काबिल
पौत्र ***डॉ. सूरज मंडल*** *को*

अनुक्रम

प्राक्कथन 7
सम्पादकीय 9

अध्याय-1 : बहुजन राजनीति का पतन

2009 : सामाजिक न्याय के लिए खतरे की घंटी, 13; मंद पड़ने लगी है सामाजिक न्याय की राजनीति, 14; 2009 से भी बदतर : लोकसभा चुनाव-2014, 15; और 2014 से भी बदतर साबित हुआ : 2017, 16; बिहार मॉडल को अपनाने से दूर रहे : माया-अखिलेश, 16; बसपा के पक्ष में हवा बनाने में मुस्तैद रहे अधिकांश बहुजन बुद्धिजीवी, 17; बहुजन राजनीति के पतन का मतलब : सामाजिक न्याय की राजनीति का पतन नहीं, 17; 2019 : बहुजनों के इतिहास की सबसे बड़ी लड़ाई, 18; 2019 में भाजपा में पेश करेगी और कठिन चुनौती, 19; बहुजनवादी दलों की शक्ति का स्रोत, 19; बहुजनों की सापेक्षिक वंचना : भाजपा के खिलाफ साबित हो सकती है बारूद का ढ़ेर! 20; सापेक्षिक वंचना के सद्व्यवहार के लिए : डाइवर्सिटी, 21; सामाजिक अन्यायमुक्त भारत निर्माण बने चुनावी मुद्दा, 22; बहुजन नेताओं को भारत का ताज पहना सकती है : डाइवर्सिटी, 22; एग्जिट पोल से शुरू : मेरा पूर्वानुमान, 23; बहुजनों का खेल खत्म! 24; पराजित मूलनिवासी समाज के एक लेखक की ओर से हेडगेवारवादियों को अग्रिम बधाई! 24; यूपी चुनाव परिणाम की घोषणा शुरू होने के आधे घंटे पहले से जारी मेरे पोस्ट, 24; सहस्राधिक वर्षो के बाद आज होगा : मुकम्मल हिन्दू-राज! 24; आज से बहुजनों की गुलामी के नए दौर की शुरुआत हो सकती है, 25; भाजपा की शक्ति से अनजान : यूपी का अदूरदर्शी बहुजन नेतृत्व, 26; भाजपा के सर पर प्रत्याशा का अभूतपूर्व बोझ! 26; मोदी की काट के लिए : मेश्राम, 27; अब सारे सरकारी उपक्रमों को तेजी से निजी क्षेत्र के हाथों में जाना ही है, 28; हार का ठीकरा ईवीएम पर फोड़ने वालों को चुनाव आयोग की चुनौती, 29; कांशीराम जहाँ छोड़ गए, मायावती वहां से एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाईं! 30; लोकसभा चुनाव—2019 : एक्जिट पोल से शुरू मेरा पुर्वानुमान, 31; लोकसभा चुनाव-2019 : विपक्ष कायम करने जा रहा है विफलता का एवरेस्ट सरीखा दृष्टांत! 31; मैसेज ऑफ़ द इलेक्शन रिजल्ट : 2019, 33।

अध्याय-2 : जीतने लायक हालात तो बहुजनवादी दलों के पक्ष में थे

यह त्रिमूर्ति घटित कर सकती है : लोकतांत्रिक क्रांति! 39; 8-14 जनवरी, 2019 : सर्वाधिक घटनाबहुल दिन! 39; निकट आये बहुजनवादी दल : पूरा हुआ दो दशक पुराना सपना, 39; तैयार हैं लोकतांत्रिक क्रांति के हालात, 40; तुंग पर है सापेक्ष वंचना का अहसास, 40; क्रांति के लिए तैयार हैं : लाखों बहुजन लेखक-पत्रकार! 41; क्रांति के लिए दूर हुई : योग्य नेतृत्व की कमी, 42;**जिसकी जितनी संख्या भारी-उसकी उतनी भागीदारी**, 43; सवर्ण आरक्षण के जवाब में उभरा : जिसकी जितनी संख्या भारी का नारा! 43; बसपा का पेटेंट नारा बना : सबका नारा! 44; गरीबी हटाओ बनाम इंदिरा हटाओ! 45; जब तक सूरज चाँद रहेगा-इंदिरा तेरा नाम रहेगा! 46; मिले मुलायम कांशीराम..., 46; विश्व इतिहास का सर्वोत्तम नारा! 47; जिसकी जितनी संख्या भारी का नारा : क्यों लोकसभा चुनाव-2019 में घटित कर सकता है चमत्कार! 47; संपदा-संसाधनों का इतना असमान बंटवारा और कहां! 49; वर्तमान हालात में यदि सामाजिक न्यायवादी दल प्रत्येक क्षेत्र में जिसकी जितनी संख्या भारी की घोषणा कर दें तो..., 50; **क्या मायावती कांशीराम के भागीदारी दर्शन, का सदव्यवहार करने के लिए आगे बढ़ेंगी**! 51; डॉ. आंबेडकर के समतुल्य : मान्यवर कांशीराम, 51; मोदी की सुनामी में सबसे ज्यादा क्षतिग्रस्त : कांशीराम की बसपा, 51; जातिमुक्त दिखने की होड़ लगाये : सामाजिक न्यायवादी नेता, 52; जिसकी जितनी संख्या भारी की जगह : जिसकी जितनी तैयारी, उसकी उतनी भागीदारी! 53; मायावती का एक ही अच्छा काम : ठेकों में आरक्षण, 54; कांशीराम के भागीदारी दर्शन के प्रति पैदा हुआ अभूतपूर्व जुनून! 54; **पहले चरण के चुनाव का रुझान**, 57; विपक्ष भाजपा की शक्ति के स्रोतों को नज़रंदाज़ न करे! 57; अगड़ा-पिछड़ा पर केन्द्रित हुआ : चुनाव का पहला चरण, 57; विपक्ष को सोचना होगा इवीएम से आगे, 58; आरएसएस : भाजपा की शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत, 58; विपक्ष को पार पाना होगा भाजपा का प्रवक्ता बने चैनलों से, 59; भाजपा को खिलाना होगा सामाजिक न्याय की पिच पर, 60; **जैकब जुमा और ट्रंप से प्रेरणा लेने की जरुरत**! 62; लालू ने खड़ा किया : मंडल बनाम कमंडल का मुद्दा, 63; माया-अखिलेश ने नहीं लिया : लालू यादव से प्रेरणा! 63; महा-बदनाम जैकब जुमा के सामने लाचार हुए : भारत के सवर्णों जैसे गोरे, 64; अमेरिकी बहुजनों की बात उठाकर अनाड़ी और अराजनीतिक ट्रंप बना : विश्व का सबसे शक्तिशाली आदमी, 65।

अध्याय-3 : साक्षात्कार

साक्षात्कार की प्रश्नावली, 69; प्रश्नोत्तर, 77; अजय कुमार चौधरी, 77; डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, 80; मनीषा गौतम, 86; संजीव चन्दन, 93; महेन्द्र नारायण सिंह यादव, 95; डॉ. अनिल कुमार, 99; बुद्ध शरण हंस, 104; संदीप यादव, 120; डॉ. रामविलास भारती, 124।

प्राक्कथन

–डॉ. अनिल यादव जयहिंद

सामाजिक न्याय का बहुजन आन्दोलन बीसवीं सदी में बहुत शक्तिशाली रहा। आन्दोलन ने बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर, पेरियार, लोहिया, कांशीराम, कर्पूरी ठाकुर, रामस्वरूप वर्मा, बाबू जगदेव प्रसाद, और लालू यादव जैसे नेताओं के गतिशील और प्रेरणादायक नेतृत्व से नई बुलंदियां प्राप्त कीं। 1990 में मंडल आयोग की रिपोर्ट लागू होने के बाद एक इंकलाबी तूफ़ान उठा। दलित, आदिवासी, और अन्य पिछड़ा वर्ग के बीच की दूरियां मिटीं। बहुजन समाज एक ठोस आकार लेने लगा। एक बार तो ऐसा लगने लगा कि बस अब हम न्याय पर आधारित, मानवतावादी, शोषण-मुक्त समतामूलक समाज बनाने के बिलकुल ही क़रीब हैं। लेकिन इक्कीसवीं सदी आते-आते उस तूफानी क्रांति रथ के पहिये पंक्चर हो गए। मंडल पर कमंडल हावी हो गया। सामाजिक न्याय के विचार को लेकर चलने वाले राजनीतिक दल बुरी तरह से पराजित हो गए। आज समाजी इंकलाब के सिपाही निराशा के घोर अंधकार में आकंठ डूबे हैं। ऐसा नहीं कि लड़ाई नहीं हो रही। समाजी इंसाफ के इंकलाब का सिपाही, साधारण आम कार्यकर्ता, आज भी शेर की तरह लड़ रहा है, जूझ रहा है, संघर्ष कर रहा है, कुर्बानियां दे रहा है। 1 जनवरी 2018 का भीमा कोरेगांव आन्दोलन, 2 अप्रैल 2018 का अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम के लिए भारत बंद, और फिर 5 मार्च, 2019 का 200 पॉइंट रोस्टर के लिए भारत बंद : यह सब अभूतपूर्व था। इतिहास में बहुजनों द्वारा, पूरे देश में एक साथ, इस प्रकार के आन्दोलन पहले कभी नहीं हुए थे। यह साबित करता है कि आम सामाजिक कार्यकर्त्ता, छोटे-छोटे संगठन बना कर, किताबें पढ़ कर और सोशल मीडिया का इस्तेमाल कर के, समाज में जन-जागरण को जिस नई ऊंचाईयों पर ले गया है, उस ऊँचाई पर समाज पहले कभी नहीं था। फौज तो तैयार है, लेकिन शायद सेनापति तैयार नहीं हैं। एक कहावत है। यदि दो सेना आपस में लड़ रहीं हों। एक सेना के सिपाही शेर हों, लेकिन सेनापति गधा हो : दूसरी सेना के सिपाही गधे हों, लेकिन सेनापति शेर हो तो जीत हमेशा शेर सेनापति वाली सेना की होगी। शायद आज समाजी इंसाफ के आन्दोलन में काबिल नेतृत्व का अभाव सबसे बड़ी समस्या है। इसके पीछे अनेकों कारण भी हो सकते हैं। यक्ष प्रश्न यह है कि कैसे हो बहुजन राजनीति का उद्धार?

भारतीय समाज की समस्याओं को बाबा साहेब और मार्क्स के सिद्धांतों के द्वारा गहराई से विश्लेषण कर समझने वाले एच. एल. दुसाध साहिब ने, जिन्हें देश डाइवर्सिटी मैन के नाम से भी जानता है,यह प्रश्न खड़ा किया है कि कैसे हो बहुजन राजनीति का पुनरुद्धार? दुसाध साहिब एक मूल चिन्तक, विचारक, और दार्शनिक हैं, जिन्होंने भारतीय समाज का सभी परिप्रेक्ष्य और हर दृष्टिकोण से अध्ययन किया है। भारतीय

समाज पर जितना इन्होंने लिखा है, शायद ही किसी अन्य लेखक ने इतना अधिक लिखा हो। जहाँ अधिकतर लेखक खुद को नौकरियों में आरक्षण के दायरे तक सीमित रखते हैं, वहीं दुसाध साहिब सत्ता-शक्ति के सभी स्रोतों- राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक,सांस्कृतिक- में भागीदारी की बात करते हैं। समस्या का हमेशा के लिए उन्मूलन और स्थायी हल भी ऐसे ही होगा। दुसाध साहिब ने अपने प्रश्न पर संरचित चर्चा के लिए इसे पंद्रह प्रश्नों में विभाजित कर के अपने विचार तो रखे ही हैं, लेकिन इस किताब में दुसाध साहिब ने भारतीय समाज के दस अन्य मूर्धन्य चिन्तक-विचारकों का परिप्रेक्ष्य भी रखा है। इन चिंतकों में अजय कुमार चौधरी, डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, मनीषा गौतम, संजीव चन्दन, महेंद्र नारायण सिंह यादव, डॉ. अनिल कुमार, बुद्ध शरण हंस, संदीप यादव, डॉ राम बिलास भारती और चन्द्रभूषण सिंह यादव हैं। इन सभी के विचारों को पढ़ने, जानने के बाद बहुजन राजनीति को समझने के लिए कुछ बाकी नहीं बचता। इन विचारकों-चिंतकों को आप भारतीय समाज का थिंक-टैंक भी कह सकते हैं। इन सभी ने इन प्रश्नों के बड़े ईमानदारी और सच्चाई से उत्तर दिए हैं। इन सबको पढ़ने के बाद बहुजन आन्दोलन और राजनीति के रोग का डायग्नोसिस भी हो जाता है और ट्रीटमेंट भी समझ में आ जाता है।

एक बात साफ़ है, यदि कोई वही कार्य करता रहे, जो पहले से करता आया है, तो उस कार्य के परिणाम भी वही आते रहेंगे, जो पहले आते रहे हैं। पागलपन की एक परिभाषा यह भी है, कि वही काम करते रहना, लेकिन अलग नतीजों की उम्मीद करना। स्थितियां कभी भी वही नहीं रहतीं, हमेशा बदलती रहती हैं। नई परिस्थितियों के अनुसार जो समाज खुद को नहीं ढ़ालता वह नष्ट हो जाता है। महान प्रकृतिवादी जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन का कहना है कि जो जीव परिस्थिति अनुसार अनुकूलन नहीं करते, अर्थात खुद को बदलते नहीं उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। डायनासौर जो कभी पृथ्वी पर राज करते थे, इसका उदहारण हैं। ब्रिटेन को दूसरे विश्व-युद्ध में हिटलर की जर्मनी पर जीत दिलाने वाले चर्चिल को वहां की जनता ने हरा दिया, क्योंकि उन्हें लगा कि युद्ध के बाद ब्रिटेन के पुनर्निर्माण के लिए क्लेमेंट अटली ज्यादा उचित रहेंगे। भाजपा ने भी 2004 और 2009 की लोकसभा चुनावी हार के बाद, अडवाणी को हटा कर मोदी को आगे कर दिया। अडवाणी भाजपा को 1984 की दो सीट से ले कर 1990 में 85 और 1998 में सरकार बनवाने वाले नेता थे।

प्रिय साथियों, इंकिलाब भी आते हैं और अक्सर इंकिलाबों का आगाज़ पढ़ने से होता है। मुझे लगता है दुसाध साहेब और डॉ कौलेश्वर प्रियदर्शी द्वारा सम्पादित यह पुस्तक हर उस भारतीय को पढ़नी चाहिए जो भारत में सम्पन्नता और खुशहाली चाहता है, जो भारत को एक सशक्त, संपन्न लोगों का सशक्त देश देखना चाहता है। मेरा पक्का विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक भारत के समाजी इंकिलाब के सिपाहियों को एक नई दिशा देने के साथ-साथ एक नई उर्ज़ा और प्रेरणा भी देगी। मानवतावादी न्याय पर आधारित समतामूलक समाज बनाने में यह पुस्तक एक मील का पत्थर साबित होगी। इसे अपना बहुमूल्य समय निकाल कर अवश्य पढ़ा जाए।

सम्पादकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'बहुजन राजनीति की हार'(2009) और 'बहुजन राजनीति का पतन '(2017) के बाद मेरे संपादन में आने वाली तीसरी ऐसी किताब है जिसमें बहुजन राजनीति की दुर्दशा और इससे उबरने के उपायों पर गंभीर रौशनी डाली गयी है। पाठकों को पता है मेरी पुस्तकों की सम्पादकीय सामान्यतया 10-12 पृष्ठों की होती है जिससे विषय वस्तु को समझने में आसानी होती है। किन्तु इस बार पाठकों पर अतिरिक्त बोझ डालते हुए बहुत थोड़े से शब्दों में अपनी बात रख रहा हूँ। जहाँ तक बहुजन राजनीति के पतन का सवाल है, पुस्तक के पहले अध्याय में 'अपनी बात : बहुजन राजनीति का पतन' (पृष्ठ-13); 'एग्जिट पोल से शुरू मेरा पूर्वानुमान : 2017 यूपी विधानसभा चुनाव' (पृष्ठ-23) और 'लोकसभा चुनाव -2019 : एग्जिट पोल से शुरू मेरा पूर्वानुमान'(पृष्ठ-31) शीर्षक से छपी सामग्री पढ़कर कोई भी पाठक इसकी उपलब्धि कर सकता है। बाकी बचा-खुचा सारा कुछ पुस्तक का तीसरा अध्याय पूरा कर देता है। वास्तव में पुस्तक का तीसरा, साक्षात्कार अध्याय ही वह पमुख अध्याय है जिसके जरिये बहुजन राजनीति के पतन और उद्धार के उपायों को ठीक से समझा जा सकता है। इसे पढ़ने के बाद पुस्तक की प्रस्तावना लिखने वाले डॉ.अनिल यादव जयहिंद के शब्दों में 'बहुजन राजनीति को समझने के लिए कुछ बाकी नहीं बचता। इन सबको पढने के बाद बहुजन आन्दोलन और राजनीति के रोग का डायग्नोसिस भी हो जाता है और ट्रीटमेंट भी समझ में आ जाती है।'

बहरहाल डॉ. अनिल यादव जयहिंद साहब ने बहुजन राजनीति के रोग का डायग्नोसिस करते हुए एक बेहद महत्त्वपूर्ण बात कही है। उन्होंने कहा है, 'आज समाजी इन्कलाब के सिपाही निराशा के घोर अन्धकार में आकंठ डूबे हैं। ऐसा नहीं कि लड़ाई नहीं हो रही है। समाजी इन्कलाब का सिपाही, आम सामाजिक कार्यकर्त्ता आज भी शेर की तरह लड़ रहा है, जूझ रहा है, संघर्ष कर रहा है, कुर्बानियां दे रहा है..आम सामाजिक कार्यकर्त्ता छोटे-छोटे संगठन बनाकर, किताबें पढ़कर और सोशल मीडिया का इस्तेमाल करके समाज में जन जागरण को जिस ऊँचाई पर ले गया है, उस ऊँचाई पर समाज पहले कभी नहीं था। फ़ौज तो तैयार है, लेकिन शायद सेनापति तैयार नहीं हैं। एक कहावत है यदि दो सेनाएं आपस में लड़ रही हों और एक सेना के सिपाही शेर हों, लेकिन सेनापति गधा हो : दूसरी सेना के सिपाही गधे हों लेकिन सेनापति शेर हो तो, जीत हमेशा शेर सेनापति वाली सेना की ही होगी।' जाहिर डॉ. जयहिंद ने प्रस्तावना में यही सन्देश देना चाहां है कि बहुजनवादी दलों के पास सबकुछ है, कमी है तो सिर्फ योग्य नेतृत्व की। वास्तव में बहुजन राजनीति की सबसे बड़ी समस्या है यही है कि इसके पास प्रतिपक्षी नरेंद्र मोदी जैसा नेतृत्व नहीं है। बहरहाल बहुजन राजनीति का पुनरुद्धार करना है तो योग्य नेतृत्व के अभाव में इतिहास ने जिन बहुजन बुद्धिजीवियों, एक्टिविस्टों पर ब्रिटिश काल के भारतीयों तथा दक्षिण अफ्रीका के मूलनिवासी कालों की भांति गुलामों की जिंदगी जी रहे बहुजनों की मुक्ति का बोझ डाल दिया है, उन्हें सापेक्षिक वंचना (Relative Deprivation) का अहसास तीव्रतर करने के साथ ऐसे नेतृत्व

को बढ़ावा देना होगा, जो सापेक्षिक वंचना से उपजी आदर्श स्थितियों का सदव्यवहार कर सके। बहुजनों का दुर्भाग्य है कि इन आदर्श स्थितियों के सदव्यवहार लायक इस समय कोई उपयुक्त नेतृत्व नहीं है। नेतृत्व की इन्ही कमियों का लाभ उठाकर जन्मजात शासक दलों ने इक्कीसवीं सदी में इवीएम के जरिये एक प्रतिक्रान्ति कर दी है, जिसका भयावह रूप लोकसभा चुनाव-2019 के बाद सामने आया है। बहुजन राजनीति के घोरतर निराशा के दौर में भारी राहत की बात है कि कुछ ऐसे बहुजन नेताओं का उभार होता दिख रहा है, जिनमें योग्य नेतृत्ववाली विशेषताएं हैं। इनमें पहला नाम छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री भूपेश बघेल का है, जिन्होंने 15 अगस्त, 2019 को कुछ ऐसे ऐतिहासिक फैसले लिए जो बहुजन-मुक्ति की दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता है।

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर भूपेश बघेल ने अपने राज्य में अनुसूचित जाति का आरक्षण 12 प्रतिशत से बढाकर 13 और ओबीसी का 14 से 27 प्रतिशत कर दिया। इस तरह आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा तोड़ने के बाद अब छत्तीसगढ़ में बहुजनों का आरक्षण 72 प्रतिशत हो गया। वह यहीं तक नहीं रुके; दीवाली के कुछ दिन पूर्व उन्होंने एसटी-एससी के चतुर्थ से लेकर प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों के प्रमोशन में आरक्षण देने की भी घोषणा कर दिया। बघेल सरकार के नक्शे कदम का अनुसरण करते हुए आंध्र प्रदेश में जगनमोहन रेड्डी सरकार ने मंदिरों के बोर्ड ऑफ़ ट्रष्टी में पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को 50 फीसद और महिलाओं को 50 प्रतिशन आरक्षण देने की घोषणा कर दिया। यही नहीं रेड्डी सरकार ने स्थानीय लोगों को प्राइवेट सेक्टर की नौकरियों में 75 प्रतिशत आरक्षण के साथ ही निगमों, बोर्डों, सोसाइटियों और बाजार कार्यस्थलों में पिछड़ा वर्ग, एससी, एसटी को 50 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा कर दिया है। इसके साथ रेड्डी सरकार ने सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने की क्रांतिकारी घोषणा भी की है। यह पुस्तक चीख-चीख कर कहती है कि बहुजन राजनीति का पुनरुद्धार तब होगा जब बहुजनवादी नेतृत्व बहुजन मतदाताओं को सरकारी नौकरियों से आगे बढ़कर निजी क्षेत्र और प्रमोशन में आरक्षण; सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, पुरोहिती इत्यादि में संख्यानुपात में सर्वव्यापी आरक्षण दिलाने का सपना दिखाना शुरू करेगा। निश्चय ही भूपेश बघेल और जगनमोहन रेड्डी का ऐतिहासिक कदम बाकी बहुजन नेताओं को बड़ा सपना दिखाने के लिए प्रेरित करेगा।

और अंत में! डाइवर्सिटी साहित्य श्रृंखला की एक और महत्वपूर्व पुस्तक को पाठकों तक लाने में असाधारण सहयोग के लिए डॉ. कौलेश्वर प्रियदर्शी को अशेष धन्यवाद। अशेष आभार पुस्तक की प्रस्तावना लिखने के लिए डॉ.अनिल यादव जयहिंद साहब को। अशेष आभार अजय कुमार चौधरी, डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, मनीषा गौतम, संजीव चन्दन, महेंद्र नारायण सिंह यादव, डॉ. अनिल कुमार, बुद्ध शरण हंस, संदीप यादव, डॉ. राम बिलास भारतीय और चन्द्रभूषण सिंह यादव को जिन्होंने अपने प्रश्नोत्तर के जरिये बहुजन राजनीति के पुनरुद्धार का मार्ग सुझाने का महामूल्यवान काम किया है।

14वां डाइवर्सिटी डे जय भीम-जय भारत **एच.एल. दुसाध**
26 नवम्बर, 2019

अध्याय–1

बहुजन राजनीति का पतन

बहुजन राजनीति का पतन

अपनी बात : बहुजन राजनीति का पतन

11 मार्च, 2017 को पांच राज्यों, विशेषकर यूपी का चुनाव परिणाम आने के बाद जिस तरह से बहुजन समाज (दलित, आदिवासी, पिछड़े और इनसे धर्मान्तरित समुदाय) निराशा की अतल गहराइयों में डूबा और जिस तरह आज यह खून के आंसू रो रहा है, उसे देखते हुए मैं इस पुस्तक को आज के भारत की ज्वलंत समस्यायें श्रृंखला में डालना चाहता था। ऐसा करने पर जिस तरह 2008 से मैने 'तेज विकास रोशनी से वंचित बहुजन समाज' से ज्वलंत समस्याओं की श्रृंखला शुरू किया, उस कड़ी की यह बीसवीं किताब होती। लेकिन इस इरादे का परित्याग किया तो इसलिए कि इसी विषय पर, इसी श्रृंखला की सातवीं पुस्तक मेरे संपादन में 2009 में आ चुकी थी। पुस्तक का नाम भी प्रायः इसी से मिलता जुलता था, 'सामाजिक न्याय की राजनीति की हार'। 2009 के अगस्त में प्रकाशित वह पुस्तक भी प्रायः आज के ही हालात में तैयार हुई थी। तब मई 2009 में आये 15 वीं लोकसभा चुनाव परिणाम के बाद बहुजन समाज 2017 की भांति ही निराशा में डूबा था और मुझे वह किताब तैयार करने का निर्णय लेना पड़ा था। कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक उसी का विस्तार है।

2009 : सामाजिक न्याय के लिए खतरे की घंटी

उस पुस्तक के तैयार करने का सबब बताते हुए मैंने लिखा था-' कहना न होगा 15 वीं लोकसभा का चुनाव परिणाम आने से मुझ जैसे करोड़ों लोगों को आघात लगा। कारण, सामाजिक न्याय के झंडाबरदारों की दुखद परिणति और काग्रेस-भाजपा जैसे सवर्णवादी दलों द्वारा पिछले चुनाव की तुलना में 39 और ज्यादा सीटें जीतने से राजनैतिक गैर-बराबरी के खात्मे के प्रति संसय पैदा हो गया है। यही नहीं मंडलोत्तरकाल में राजनैतिक रूप से सचेत हुआ बहुजन जहां धीरे-धीरे यह उम्मीद पालना शुरू कर दिया कि एक

दिन वर्ण-व्यवस्था के वंचित केन्द्रीय सत्ता पर कब्ज़ा जमा कर सम्पदा संसाधनों में अपना प्राप्य ले लेंगे, वहां सामाजिक न्यायवादी राजनीति की शिकस्त ने उन्हें निराशा के आगोश में ले लिया है।' (**सं. दुसाध, एच.एल., सामाजिक न्याय की राजनीति की हार, पृ. -10**)। निश्चय ही 2009 सामाजिक न्याय की राजनीति के लिए खतरे की घंटी था, जिसे ध्यान में रखकर एजेंडा न तय कर पाने के कारण बहुजनवादी दलों को 2014 में 2009 से भी बड़ा और 2017 में सबसे बड़ा आघात झेलना पड़ा।

2009 में इनकी हार के कारणों पर आलोकपात करते हुए मैंने लिखा था, 'जिनके समर्थन के दायरे में विशाल बहुजन समाज आता हो, उनका अल्पजनों के समर्थन पर निर्भर दलों के सामने आत्मसमर्पण के मुद्रा में आना निश्चय ही लोगों को विस्मित करेगा। पर, इसमें विस्मित होने की कोई बात नहीं है। दरअसल विगत वर्षों में इन्होनें बहुजन समाज को अपने वोटों के गुलाम से भिन्न रूपों में देखा ही नहीं। ये यह मानकर निश्चिन्त थे कि इनके लिए कुछ नहीं भी करने पर उनका वोट उन्हें मिलेगा ही मिलेगा इसलिए उन्होंने अपना सारा ध्यान न सिर्फ सवर्णों पर लगाया, बल्कि उसके हिसाब से अपना एजेंडा भी तय किया। यही कारण है चुनाव के बहुत पहले से उन्होंने जितना शोर सवर्णों के आरक्षण के लिए मचाया, उसके मुकाबले बहुजनों की भागीदारी पर प्रायः चुप्पी साधे रखा। यह सारी कवायद उन्होंने खुद की छवि जाति-मुक्त नेता के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए किया। इस स्कीम के तहत ही इन लोगों ने तिलक-तराजू और तलवार, भूराबाल साफ़ करों इत्यादि नारों से पल्ला झाड़ने की कोशिश किया। यह भारतीय समाज के सदियों के विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न तबकों, जिनका सम्पदा-संसाधनों पर आज भी 80-85 प्रतिशत कब्ज़ा है, के विरुद्ध उछाले गए वे नारे थे, जिनसे सामाजिक अन्याय के खात्मे की उम्मीद जगी थी। यही वे नारे थे जिसने लोहिया और कांशीराम के सपनों को साकार करने का बीड़ा उठाने वालों को फर्श से अर्श पर पहुंचा दिया था। यह बात जोर गले से कही जा सकती है कि सामाजिक अन्याय के खात्मे की लड़ाई से दूर भागने के कारण ही लोहिया और कांशीराम की विरासत संभालने वालों का बुरा हाल हुआ था।' (**वही, पृष्ठ-12**)।

ऐसा नहीं कि 2009 में सामाजिक न्याय की राजनीति पर मैं ही निराशा व्यक्त किया। नहीं, ढेरों बहुजन और गैर-बहुजन विद्वानों की जो असंख्य टिप्पणियां प्रकाशित हुई, उनमें भी कुछ-कुछ ऐसी ही बात कही गयी । किन्तु मुझे सर्वोत्तम लगी थी महान बहुजन पत्रकार दिलीप मंडल की टिपण्णी।

मंद पड़ने लगी है सामाजिक न्याय की राजनीति

मंडल ने लिखा था—'वर्ष 2009 के लोकसभा चुनाव में हिंदी पट्टी के दो राज्यों, बिहार और यूपी की राजनीति की एक हकीकत उजागर हो गयी है। लालू प्रसाद यादव, रामविलास पासवान, मायावती और यूपी में सबसे ज्यादा सीटें जीतने के बावजूद मुलायम सिंह यादव, ये सभी महारथी अपनी चमक खो चुके हैं। इसके साथ ही भारतीय राजनीति

व्यवस्था में वंचित समूहों की हिस्सेदारी बढ़ने की जो प्रक्रिया लगभग 20 साल पहले शुरू हुई थी, उस मॉडल के नायक-नायिकाओं का निर्णायक रूप से पतन हो चुका है। हालाकि यह सब एक दिन में नहीं हा है लेकिन अब वह समय है, जब इसके पतन और विखंडन की प्रक्रिया पूरी हो रही है। सामाजिक न्याय की राजनीति का सफ़र जिस उम्मीद से शुरू हुआ था, उसे याद करें तो इन मूर्तियों का इस तरह गिरना और नष्ट होना तकलीफ देता है।

बात सिर्फ इतनी सी नहीं है कि लालू प्रसाद यादव का राजनीतिक वजूद घट गया है और उनकी पार्टी सिर्फ चार सीटें जीत पाई है, या रामविलास पासवान की पार्टी का अब लोकसभा में अब कोई नामलेवा नहीं बचा है। न ही इस बात का निर्णायक महत्त्व है कि प्रधानमंत्री की कुर्सी तक पहुँचने का ख्वाब सजों रही मायावती की पार्टी का प्रदर्शन इस लोकसभा चुनाव में बेहद ख़राब रहा। मुलायम सिंह के पार्टी का प्रदर्शन पिछले लोकसभा चुनाव के मुकाबले खराब होने का भी निर्णायक महत्त्व नहीं है । अहम बात यह है कि इनसे राजनीति के जिस मॉडल की बागडोर सँभालने की अपेक्षा की जा रही थी और इनके जनाधार की जो महत्वाकांक्षाएं थी, उसे पूरा करने में सभी नाकामयाब हो चुके हैं। यह एक सपने के टूटने की दास्तान है। यह सपना था भारत को बेहतर और सबकी हिस्सेदारी वाला लोकतंत्र बनाने और देश के संसाधनों पर खासकर वंचित समूहों की हिस्सेदारी दिलाने का। मायावती की बात करें तो दो दशक पहले जिस तेजतर्रार नेता को देश ने उभरते हुए देखा था, अब की मायावती उसकी छाया भी नहीं लगतीं।' (**मंडल, दिलीप, मंद पड़ने लगी है सामाजिक न्याय की राजनीति, नवभारत टाइम्स, 25 मई, 2009**)

2009 से भी बदतर : लोकसभा चुनाव-2014

मंडल साहब ने 2009 में सामाजिक न्यायवादी नेतृत्व के निर्णायक तौर पर पतन की जो मोहर लगाया था, वह औरों को कितना स्पर्श किया, मुझे नहीं पता। किन्तु उनके उस कथन से काफी हद तक सहमत होते एवं उनको उद्धृत करते हुए मई, 2009 के बाद, खासकर सोलहवीं लोकसभा चुनाव के दौरान मैंने ढेरों लेख लिखे, जो मेरी 184 पृष्ठीय पुस्तक **'लोकसभा चुनाव -2014 : भारतीय लोकतंत्र के ध्वंस की दिशा में एक और कदम'** में संकलित हैं। इन अधिकाँश लेखों में मैंने मंडल साहब को उद्धृत करते करते हुए बार-बार यह याद दिलाया था -' यदि माया-मुलायम, लालू-पासवान इत्यादि को अपनी स्थिति नए सिरे से पुख़्ता करनी है तो उन्हें शक्ति के सभी स्रोतों में लोहिया, जगदेव प्रसाद और सर्वोपरि कांशीराम के भागीदारी दर्शन पर अपनी राजनीति खड़ी करनी होगी। खासतौर से मायावती के लिए ऐसा करना इसलिए जरुरी है क्योंकि घर-गृहथी न बसाकर, उन्होंने अपना सारा जीवन सामाजिक न्याय के महानायकों फुले-शाहूजी-पेरियार-बाबासाहेब-कांशीराम के सपनों के भारत निर्माण के प्रति समर्पित कर रखा है (**दुसाध, एच.एल., लोकसभा चुनाव-2014 : भारतीय लोकतंत्र के ध्वंस**

की दिशा में एक और कदम, पृ-54)। 2014 के आम चुनाव में मेरी ही तरह असंख्य बहुजन बुद्धिजीवियों ने अखबारों में तो नहीं, किन्तु सोशल मीडिया पर बेहिसाब लेखन करके बहुजन नेताओं को सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दे पर चुनाव केन्द्रित करने का दबाव बनाया। किन्तु सब व्यर्थ साबित हुआ। उन्होंने 2009 की शर्मनाक पराजय से कोई सबक न लेते हुए 2014 में भी सवर्णपरस्ती का दामन थामे रखा । फलतः 2017 में 2014 के मुकाबले उनका वह हस्र हुआ जिसकी कल्पना उनके बड़े से बड़े दुश्मन तक भी नहीं कर सकते थे। 2009 में जिन्हें मंडल साहब की टिपण्णी को लेकर संदेह हुआ, मई, 2014 के बाद शायद उनको भी सामाजिक न्याय के नायक/ नायिकाओं के पतन का यकीन हो गया।

और 2014 से भी बदतर साबित हुआ : 2017

2014 की कल्पनातीत पराजय के बाद सामाजिक न्याय के समर्थकों को लगा कि बहुजन नेता/नेत्री अपना वजूद बचाने के लिए निश्चित रूप से सामाजिक न्याय की राजनीति की ओर लौटेंगे। किन्तु यह भ्रम साबित हुआ। अपवाद रूप से एकमात्र सबक लिए लालू प्रसाद यादव जिन्होंने बिहार विधानसभा चुनाव-2015 को मंडल बनाम कमंडल का रूप देकर अप्रतिरोध्य से दिख रहे मोदी को गहरी शिकस्त दे दिया। (**पढ़ें तीसरे अध्याय के पृष्ठ-149 पर छपा लेख : क्या लालू मोदी राज के खात्मे के प्रति गंभीर हैं**)। लालू प्रसाद यादव ने लोकसभा चुनाव -2014 की हार से सबक लेते हुए अपने चिर प्रतिद्वंदी नीतीश कुमार से हाथ मिलाने के बाद जिस तरह मोहन भागवत के बयान को आधार बना कर चुनाव को सामाजिक न्याय की राजनीति पर केन्द्रित किया, उससे अपराजेय से दिख रहे मोदी के समक्ष हार वरण करने के सिवाय कोई उपाय ही नहीं रहा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि चुनाव को सामाजिक न्याय की राजनीति पर केन्द्रित करने पर भाजपा कभी जीत ही नहीं सकती।

बिहार मॉडल को अपनाने से दूर रहे : माया-अखिलेश

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सामाजिक न्याय समर्थक तमाम बुद्धिजीवियों ने यूपी चुनाव को 'बिहार मॉडल ' पर लड़ें जाने में सर्वशक्ति लगा दिया। किन्तु मायावती और अखिलेश न तो लालू- नीतीश की भांति सवर्णवादी भाजपा को रोकने के गठबंधन की दिशा में आगे बढे और न ही चुनाव को सामाजिक न्याय पर केन्द्रित करने में कोई रूचि लिये। हालांकि संघ प्रचारक मनमोहन वैद्य और सपा की अपर्णा यादव के आरक्षण विरोधी बयानों ने यूपी चुनाव को सामाजिक न्याय पर केन्द्रित करने के लिए लालू के मुकाबले मायावती के समक्ष बेहतर अवसर सुलभ करा दिया था। पर, शायद सर्वजनवाद को अक्षत रखने के लिए वह उस दिशा में अग्रसर नहीं हुईं। बहरहाल मायावती जहां आधे अधूरे मन से आरक्षण और मुस्लिम कार्ड खेलती रहीं, वहीं अखिलेश यादव अपने कार्यकाल में हुए एक्सप्रेस वे, मेट्रो जैसे विकास कार्यों के प्रति पूर्ण आशावादी बने रहे।

फलतः एक ऐसा चुनाव परिणाम इतिहास के पन्नो में दर्ज हुआ, जिसे बहुजन नजरिये से एक शब्द में 'दुःस्वप्न' ही कहा जा सकता है।

बसपा के पक्ष में हवा बनाने में मुस्तैद रहे अधिकांश बहुजन बुद्धिजीवी

यूपी विधानसभा चुनाव को सामाजिक न्याय पर केन्द्रित करने का मैंने अपनी ओर से जो तुच्छ प्रयास किया, वह पुस्तक के पहले और दूसरे अध्याय में दर्ज है। इस चुनाव परिणाम पर मेरी राय है कि यह कांशीरामवाद पर हेडगेवारवाद की विजय है। (देखें **तीसरे अध्याय में पृष्ठ 136 पर छपे मेरा लेख 'कांशीरामवाद पर हेडगेवार की जबरदस्त विजय'**)। बहरहाल इस चुनाव में मैने निरपेक्ष न रहकर, बसपा के पक्ष भरपूर कलम चलाया है। ऐसा क्यों किया इसका स्पष्टीकरण देते हुए पुस्तक के दूसरे अध्याय के 'बीएसपी : शंका और समाधान' लेख में मैंने लिखा है -'ऐसा इसलिए कि कुछ कमियों और सवालों के बावजूद राष्ट्रवादी, गांधीवादी, लोहियावादी और मार्क्सवादी दलों के मुकाबले आंबेडकरवादी बसपा ही एकमात्र वह दल है जो काफी हद सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्य को पूरा कर सकती है और मायावती ही वह नेत्री हैं जो उत्तर प्रदेश जैसे बर्बर राज्य को योग्य प्रशासन दे सकती हैं..।'

यूपी विधानसभा चुनाव बसपा के समर्थन में सिर्फ मैंने ही भूरि-भूरि लेखन नहीं किया, अधिकांश बहुजन बुद्धिजीवियों ने ही इसके पक्ष में अपनी ताकत झोक दिया। वे चुनाव के शेष चरण तक बसपा के पक्ष में फिजा बनांते हुए लोगों में यह सन्देश देने का प्रयास करते कि मायावती की वापसी हो रही है है। (**पढ़ें पुस्तक के दूसरे अध्याय में पृष्ठ 119 पर प्रकाशित पोस्ट-'सावधान! बहन जी आ रही हैं'**)। बहरहाल अपनी ओर से बसपा के लिए सर्वशक्ति लगाने के बावजूद मैं चुनाव का आखरी चरण आते-आते इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि भाजपा भारी बहुमत से सत्ता में आ रही है। इसीलिए मैं 11 मार्च को चुनाव परिणाम आने के दो दिन पहले ही अपनी ओर से परिणाम बताते हुए 11 मार्च की दोपहर तक मुकम्मल हिन्दूराज के कायम होने की घोषणा कर दिया। (**देखें दूसरे अध्याय के एग्जिट पोल से शुरू : मेरा पूर्वानुमान से लेकर भाजपा की शक्ति से अनजान : यूपी का अदूरदर्शी नेतृत्व, पृष्ठ 122-125**)। बहरहाल आज की तारीख में 16 जून, 2009 को जनसत्ता में 'मायावती का चरित्र और व्यक्तित्व' शीर्षक से प्रकाशित अरुण कुमार पानीबाबा के लेख के इस निष्कर्ष से काफी हद तक सहमत होने लिए विवश हूँ कि 'कांशीराम जहां छोड़कर गए, मायावती वहां से एक इंच भी आगे नहीं बढ़ी हैं।'

बहुजन राजनीति के पतन का मतलब : सामाजिक न्याय की राजनीति का पतन नही

मैं पाठकों से निवेदन करूँगा की बहुजन राजनीति के पतन का अर्थ सामाजिक न्याय की राजनीति का पतन नहीं है। ऐसा मैं 2009 से ही कह रहा हूँ। 2009 में

मैंने अपनी पुस्तक 'सामाजिक न्याय की राजनीति की हार 'पुस्तक के पृष्ठ 12 पर लिखा था-'हमने सामाजिक न्याय के नायक नायक-नायिकाओं की हार को सामाजिक नया की राजनीति की हार मान लिया है। जबकि सच्चाई यह है कि हार सामाजिक न्याय के राजनीति की नहीं, सामाजिक न्याय के नाम पर राजनीति करने वाले ऐसे नेताओं की हुई है जो राजनीति को मिशन से प्रोफेशन बना लिए थे। इन्होंने अगर चुनाव में सामाजिक न्याय का मुद्दा जोर-शोर से उठाया होता और चुनाव परिणाम ऐसा ही रहता, तब माना जा सकता है कि सामाजिक न्याय की राजनीति की हार हुई है, 2009 में जो हुआ, वही 2017 में भी हुआ है। इस चुनाव में भी सामाजिक न्याय का मुद्दा नहीं उठाया गया। ऐसे में कहा जा सकता है कि सामाजिक न्याय की राजनीति अभी अक्षत है, इसका टेस्ट होना बाकी है। चूँकि इसका अभी बढ़िया से टेस्ट नहीं हुआ है, इसलिए बहुजन नेता/नेत्रियों से भले ही हम निराश हो जाएं किन्तु, सामाजिक न्याय की राजनीति के प्रति आशावादी बने रहा जा सकता है।

× × ×

2019 : बहुजनों के इतिहास की सबसे बड़ी लड़ाई

11 मार्च, 2017 के बाद अतीत की भांति एक बार फिर उम्मीद बंधी कि बहुजन नायक/नायिका अपनी वजूद रक्षा के लिए शायद फिर सामाजिक न्याय के पक्ष में अलख जगाने के लिए खुलकर सामने आयेंगे। विगत छः माह में ऐसे कई अवसर आये भी पर, वे पूर्व की भांति ही सामाजिक न्याय का मुद्दा उठाने से बचते नजर आए। ऐसा लगता है, वे मृत-प्राय हो गए हैं। लेकिन 2019 के लोकसभा चुनाव को ध्यान में रखते हुए इस स्थिति से उबरना पूरे देश, विशेषकर हिंदी पट्टी के बहुजन नेतृत्व के समक्ष इतिहास की एक बड़ी मांग बन गयी है।

स्मरण रहे भारत का इतिहास आरक्षण पर संघर्ष का इतिहास है, जिसमें 7 अगस्त, 1990 को मंडल की रिपोर्ट आने के बाद एक नया मोड़ आ गया। इसके फलस्वरूप जहां हजारों साल से शक्ति के स्रोतों से वंचित शूद्रों (ओबीसी) को सरकारी नौकरियों में शेयर मिला, वहीं बहुजनों की जाति चेतना के राजनीतिकरण का ऐसा लम्बवत विकास हुआ कि शक्ति के स्रोतों पर हजारों साल से 80-85 प्रतिशत कब्ज़ा जमाया विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न वर्ग राजनीतिक रूप से लाचार समूह में तब्दील होने के लिये अभिशप्त हुआ। तब मंडलवादी आरक्षण से आक्रोशित होकर उनके विभिन्न गुट अपने-अपने तरीके से आरक्षण के खात्मे के लिए सक्रिय हुए। इसके लिए जहां राष्ट्रवादी भाजपा ने राम मंदिर आन्दोलन छेड़ा, वहीं गांधीवादी कांग्रेस ने देश में भूमंडलीकरण की अर्थनीति शुरू किया। इस तरह से 24 जुलाई, 1991 के बाद से केंद्र में जितनी भी सरकारें आयीं, उन सभी का एकमेव लक्ष्य आरक्षण का खात्मा रहा है। इस मामले में नरसिंह राव, वाजपेयी और मनमोहन सिंह ने जितना काम दो दशकों में किया, मोदी ने उतना तीन वर्षो में कर दिखाया है। उसी मोदी को अब संघ परिवार राम मंदिर आन्दोलन के सहारे 2019

में फिर सत्ता लाने की तैयारियों में जुट गया है। और मोदी यदि 2019 में फिर सत्ता में आ जाते हैं, मूलनिवासियों की इतनी क्षति हो जाएगी जिसकी भविष्य में भरपाई प्रायः नामुमकिन हो जाएगी। ऐसे में 2019 में मूलनिवासियों को भारतीय इतिहास में सबसे बड़ी लडाई की मानसिक प्रस्तुति अभी से ले लेनी पड़ेगी। और हम नहीं मानते कि मृत-प्राय हो चुके बहुजन नेता/नेत्री 2019 में अपनी भूमिका अदा करने के लिए सामने नहीं आयेंगे। नहीं, आयेंगे और जरुर आयेंगे। बहरहाल अगर वे 2019 में अपनी ऐतिहासिक जिम्मेवारी के निर्वहन का मन बनाते हैं तो उन्हें नए सिरे से चैम्पियन सवर्णवादी दल भाजपा की स्थिति का आकंलन कर लेना पड़ेगा।

2019 में भाजपा में पेश करेगी और कठिन चुनौती

गत मार्च में पांच राज्यों का चुनाव परिणाम आने के बाद से भाजपा सदियों से शक्ति के स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्ज़ा जमाये विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न वर्ग को और संपन्न तथा मूलनिवासियों को पूरी तरह शक्तिहीन करने की सुपरिकल्पित योजना के तहत जहां एक ओर आरक्षण के खात्मे की कार्ययोजना पर और मुस्तैद हुई, वहीं दूसरी ओर वह 23 अगस्त, 2017 से आरक्षित वर्गों की एकता को पूरी तरह ध्वस्त करने के कुत्सित इरादे से आरक्षण के वर्गीकरण अर्थात बंदरबांट के मोर्चे पर पूरी तरह मुस्तैद हो गयी है। फिलहाल तो इसका लक्ष्य ओबीसी आरक्षण है पर, भविष्य में एससी/एसटी का भी आना तय है। आरक्षण का वर्गीकरण करने के फलस्वरूप चिरकाल से अभावों में रहे आरक्षित वर्गों के लोग, अपने नाममात्र के फायदे को देखते हुए, मोदी को सामाजिक न्याय का नया मसीहा मानने लग सकते हैं, जो कि भाजपा की योजना है। और जिस तरह देश की प्रायः सम्पूर्ण मीडिया, साधु-संत और सवर्ण लेखक-विद्वान भाजपा के साथ हो लिए हैं, उससे मुमकिन है कि बहुजन समाज की आरक्षण से कम लाभान्वित जातियां, मोदी को मसीहा मानने भी लगें। अगर ऐसा होता है तब तो सामाजिक न्याय का बिहार जैसा मुद्दा बेअसर हो जायेगा। बहरहाल पांच राज्यों के चुनाव के बाद भाजपा जहां एक ओर आरक्षण के वर्गीकरण के जरिये पहले से कमजोर बहुजन एकता को भविष्य में खंड-खंड कर खुद की स्थिति और सुरक्षित करने जा रही है, वहीं अपनी शक्ति में इतना विस्तार कर ली है, जिसकी कल्पना कर विपक्ष के पसीने छूट जाएँ। (**देखें पुस्तक के तीसरे अध्याय में पृष्ठ 156 पर छपा लेख 'भाजपा की शक्ति के स्रोत'**)। लेकिन अपराजेय दिख रही महाशक्तिशाली भाजपा को 2019 में आसानी से शिकस्त दिया जा सकता है, यदि बहुजनवादी दल अपने शक्ति के स्रोतों का सदुव्यवहार करें तो।

बहुजनवादी दलों की शक्ति का स्रोत

इस पुस्तक में बहुजनवादी दलों की शक्ति के स्रोत पर आलोकपात करता एक लेख प्रकाशित किया गया है। (**पढ़ें तीसरे अध्याय में पृष्ठ 160 पर छपा लेख 'बहुजनवादी**

Continue Your Reading Journey

This preview has ended. Access the complete library and support our mission.

Join Our Inclusive Reading Community

- ✓ We champion diverse voices and perspectives
- ✓ Your support helps amplify underrepresented authors
- ✓ We provide free access to educational institutions
- ✓ Building bridges through shared stories
- ✓ Creating space for all narratives to be heard

Support Our Mission

Your donation enables us to:

- Curate diverse book collections
- Support authors from marginalized communities
- Provide free resources to educators
- Maintain our accessible digital library

Visit: www.diversitymission.in

Sign the diversity pledge • Make a donation • Download full library